एस.के.जी. शुगर लिमिटेड

बनाम

श्री अली हसन, अध्यक्ष, औद्योगिक न्यायाधिकरण, बिहार और अन्य

(एस.आर. दास, मुख्य न्यायाधीश, एन.एच. भगवती, बी.पी. सिन्हा, के. सुब्बा राव और के. एन. वांचू, न्यायामूर्तिगण)

औद्योगिक विवाद - न्यायनिर्णयन लंबित रहने के दौरान नियोक्ता द्वारा कामगारों की सेवामुक्ति 'नियोक्ता', का अर्थ --औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (1947 का XIV), धारा 33, 33 ए - भारतीय कंपनी अधिनियम, 1913 (1913 का 7), धारा 171।

गया शुगर मिल्स लिमिटेड परिसमापन में चली गई और उसके स्वामित्व वाली चीनी मिल को 6 दिसंबर, 1954 को न्यायालय की अनुमति से समापक द्वारा अपीलकर्ता को पट्टे पर दे दिया गया, जिसे पट्टे के निबंधनों के अनुसार संचालित किया जाना था, जिसमें साथ-साथ यह प्रावधान था कि पट्टेदार न तो कंपनी के, न ही समापक के या निवर्तमान पट्टेदारों के किसी भी दायित्व के लिए उत्तरदायी होगा और न ही पट्टे में विशेष रूप से उल्लिखित कर्मचारियों को छोड़कर उनके किसी भी कर्मचारी या पहले से काम कर रहे कर्मचारियों को नियुक्त करने के लिए बाध्य होगा। 2 दिसंबर, 1954 को, अर्थात् अपीलकर्ता के चीनी मिल पर कब्जा प्राप्त करने से चार दिन पूर्व, बिहार सरकार ने एक अधिसूचना जारी की, जिसमें गया शुगर मिल्स लिमिटेड सहित कुछ विनिर्दिष्ट चीनी मिलों के प्रबंधन और उनके संघों द्वारा प्रतिनिधित्व किए जाने वाले उनके कामगारों के बीच एक विवाद को उत्तरदाता संख्या 1 द्वारा गठित औद्योगिक न्यायाधिकरण को न्यायनिर्णयन के लिए भेजा गया। अपीलकर्ता को कोई सूचना नहीं दी गई और उसके विरुद्ध कार्यवाही पूरी तरह से एकपक्षीय थी। तथापि, औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 33 ए के अधीन अपीलकर्ता के विरुद्ध कामगारों के दो समूहों द्वारा

औद्योगिक न्यायाधिकरण के समक्ष शिकायतें की गईं, जिनमें एक मामले में यह आरोप लगाया गया कि उन्हें सेवामुक्त कर दिया गया है और दूसरे में यह कि अधिनियम की धारा 33 के अधीन न्यायाधिकरण की अनुमति प्राप्त किए बिना अपीलकर्ता द्वारा उनकी सेवा शर्तों में परिवर्तन किया गया है। अपीलकर्ता की ओर से यह दावा किया गया कि पट्टे के निबंधनों का कोई उल्लंघन नहीं हुआ है और अधिनियम की धारा 33 का कोई उल्लंघन नहीं हुआ है। संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन उच्च न्यायालय में उक्त कार्यवाही को अभिखंडित करने के लिए उत्प्रेषण रिट के लिए असफल रूप से आवेदन करने के पश्चात, अपीलकर्ता विशेष अनुमति द्वारा इस न्यायालय में आया और उसकी ओर से यह तर्क दिया गया कि (1) राज्य सरकार द्वारा औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 10 (1) के अधीन संदर्भ देने से पूर्व भारतीय कंपनी अधिनियम की धारा 171 के अधीन न्यायालय की कोई अनुमति प्राप्त न करने के कारण, संदर्भ विधि के विरुद्ध था और (2) औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 33 और 33ए में 'नियोक्ता' शब्द का अर्थ केवल ऐसे नियोक्ता से था जो वास्तव में उस औद्योगिक विवाद से संबंधित था जो संदर्भ का विषय था और अपीलकर्ता के संदर्भ के पश्चात मिलों का कब्जा प्राप्त करने के कारण, वह उन धाराओं के अर्थ के अंतर्गत नियोक्ता नहीं हो सकता था।

यह *अभिनिर्धारित* किया गया कि अधिसूचना के निबंधनों के उचित अर्थान्वयन से स्पष्ट रूप से यह प्रदर्शित होता है कि संदर्भ में जिसे पक्षकार बनाने का प्रयास किया गया था, वह स्वयं कंपनी नहीं बल्कि संदर्भ की तिथि पर उसका प्रबंधन था और इसलिए, भारतीय कंपनी अधिनियम की धारा 171 के अधीन न्यायालय की अनुमति का कोई प्रश्न उत्पन्न नहीं हो सकता।

औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 33 और 33ए में प्रयुक्त 'नियोक्ता' शब्द का अर्थ उस समान नियोक्ता से है, जो औद्योगिक विवाद से संबंधित है, जो न्यायनिर्णयन का विषय था,

और इसमें ऐसा नियोक्ता सम्मिलित नहीं हो सकता जो केवल कामगारों को सेवामुक्त या दंडित करता है या उनकी सेवा शर्तों में परिवर्तन करता है, जब तक कि ऐसे नियोक्ता को पूर्ववर्ती का केवल नामिती या *बेनामीदार* न दिखाया जा सके या वह अधिनियम की धारा 18 (3) (सी) के अर्थ के अंतर्गत उसके वारिसों, उत्तराधिकारियों या समनुदेशितियों की श्रेणी में न आता हो।

चूंकि, वर्तमान मामले में, अपीलकर्ता इनमें से किसी भी परीक्षण को संतुष्ट नहीं करता है, इसलिए वह अधिनियम की धारा 33 के अधीन न्यायाधिकरण की अनुमति प्राप्त करने के लिए बाध्य नहीं था और इसके विरुद्ध अधिनियम की धारा 33ए के अधीन कार्यवाही अभिखंडित की जानी चाहिए।

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार: 1957 की दीवानी अपील संख्या 793।

1955 के एम.जे.सी. संख्या 392 में पटना उच्च न्यायालय के 20 सितंबर के निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष अनुमति द्वारा अपील।

सी.के. दफ्तरी, भारत के सॉलिसिटर-जनरल, ए.बी.एन. सिन्हा और *बी.पी. माहेश्वरी,* अपीलकर्ता की ओर से।

एस.पी. वर्मा, उत्तरदाता संख्या 1, 2, 6-8 और 10-23 की ओर से।

1958, नवंबर 4। न्यायालय का निर्णय भगवती, न्यायमूर्ति, द्वारा सुनाया गया-

विशेष अनुमति के साथ यह अपील पटना उच्च न्यायालय के उस निर्णय के विरुद्ध निर्देशित है जिसमें औद्योगिक न्यायाधिकरण, बिहार, पटना के समक्ष 1955 के विविध मामले संख्या 26 और 27 में कार्यवाही को अभिखंडित करने की मांग करने वाले अपीलकर्ता के रिट आवेदन को अस्वीकार कर दिया गया था।

1934 में निगमित एक कंपनी, गया शुगर मिल्स लिमिटेड के पास गुरारू, जिला गया में एक चीनी मिल थी। 4 नवंबर, 1951 को कंपनी के अनिवार्य परिसमापन का आदेश पारित किया

गया था, और 1 फरवरी, 1952 के पश्चातवर्ती आदेश द्वारा, धनसुख लाल मेहता नामक एक व्यक्ति को कंपनी का समापक नियुक्त किया गया था। गुरारू स्थित पूर्वोक्त चीनी मिल को उचित कार्यशील स्थिति में बनाए रखने और कंपनी के लाभप्रद परिसमापन के लिए समापक ने भारतीय कंपनी अधिनियम की धारा 171 (बी) के अधीन न्यायालय की स्वीकृति प्राप्त करके उक्त मिलों को उसकी सभी मशीनरी, भूमि, कारखाने और आवासीय भवनों आदि के साथ पट्टे पर दे दिया। गुरारू केन डेवलपमेंट एंड केन मार्केटिंग यूनियन लिमिटेड उक्त मिलों के पूर्व पट्टेदार थे, लेकिन उनके पट्टे की समाप्ति पर, समापक ने न्यायालय से 3 दिसंबर, 1954 को एक आदेश प्राप्त किया, जिसमें 5 दिसंबर, 1954 से 14 नवंबर, 1955 तक की अवधि के लिए अपीलकर्ता, श्री कृष्ण ज्ञानोदय शुगर लिमिटेड के पक्ष में पट्टे की स्वीकृति दी गई। समापक ने 6 दिसंबर, 1954 को अपीलकर्ता के पक्ष में उक्त मिलों का पट्टा निष्पादित किया और उसी दिन अपीलकर्ता को उसका कब्जा सौंप दिया।

पट्टे के निबंधनों और शर्तों में, जहाँ तक वे हमारे प्रयोजनों के लिए सारवान हैं, यह प्रावधान किया गया था कि अपीलकर्ता को उचित कार्यशील स्थिति में पट्टे पर दी गई संपत्तियों का कब्जा दिया जाएगा और वह पट्टाकर्ता द्वारा या उसकी ओर से किसी भी हस्तक्षेप या बाधा के बिना कारखाने का संचालन और कार्य करेगा और उसकी संपूर्ण आय और लाभ को विनियोजित करेगा और पट्टाकर्ता को कारखाने के संचालन में पट्टेदार द्वारा किए गए लाभ या हानि से कोई सरोकार नहीं होगा और वह उसमें आरक्षित किराए के अतिरिक्त किसी भी राशि या धन का हकदार नहीं होगा। अपीलकर्ता कंपनी या समापक या निवर्तमान पट्टेदारों के किसी भी दायित्व के लिए, जो अपीलकर्ता के कब्जा प्राप्त करने से पूर्व या बाद में उत्पन्न हुआ हो, सिवाय उसमें उल्लिखित दायित्वों के, किसी भी प्रकार से दायी या उत्तरदायी नहीं होगा। अपीलकर्ता अपने स्वयं के व्यय पर हमेशा कोई अतिरिक्त या अन्य मशीनरी या मशीनरी स्थापित करने और

पट्टाकर्ता को सूचना देने के पश्चात उक्त मिलों के संचालन के प्रयोजनों के लिए और उसके संबंध में गोदामों या संरचनाओं का निर्माण करने का हकदार था। अपीलकर्ता पट्टाकर्ता या निवर्तमान पट्टेदारों के किसी भी या सभी कर्मचारियों या पहले से काम कर रहे किसी भी व्यक्ति को नियुक्त करने के लिए बाध्य नहीं था, सिवाय उन 18 कर्मचारियों के जिनका पट्टे के कंडिका 11 में उल्लेख किया गया था और अपीलकर्ता उस तिथि पर गुरारू में कारखाने में पहले से नियोजित किसी भी कर्मचारी की छंटनी नहीं करने के लिए भी सहमत हुआ (पट्टे का खंड 13 (v) देखें)। उक्त पट्टे द्वारा हस्तांतरित संपत्तियों को पटना उच्च न्यायालय के नियंत्रण में माना गया था और उक्त पट्टे के संबंध में पट्टाकर्ता और अपीलकर्ता के बीच किसी भी विवाद को निर्णय के लिए उक्त न्यायालय के समक्ष रखा जाना था और उक्त न्यायालय द्वारा किया गया निर्णय सभी पक्षों पर बाध्यकारी होना था।

यह प्रतीत होता है कि 2 दिसंबर, 1954 को, अर्थात् उक्त पट्टे के निष्पादन और समापक द्वारा अपीलकर्ता को उक्त मिलों का कब्जा सौंपने से 4 दिन पूर्व, बिहार सरकार ने एक अधिसूचना जारी की, जिसमें परिशिष्ट । में विनिर्दिष्ट चीनी कारखानों के प्रबंधन और परिशिष्ट ॥ में विनिर्दिष्ट संघों द्वारा प्रतिनिधित्व किए जाने वाले उनके कामगारों के बीच कुछ विवादों को एक औद्योगिक न्यायाधिकरण के समक्ष न्यायनिर्णयन के लिए भेजा गया, जिसके एकमात्र सदस्य श्री अली हसन, जो यहाँ उत्तरदाता संख्या 1 हैं, होने थे।

संदर्भ के शर्तों में यह कहा गया था:-

"चूँकि राज्य सरकार की यह राय है कि परिशिष्ट । में विनिर्दिष्ट चीनी कारखानों के प्रबंधन और अनुलग्नक ए में विनिर्दिष्ट मामलों के संबंध में परिशिष्ट ॥ में विनिर्दिष्ट संघों द्वारा प्रतिनिधित्व किए जाने वाले उनके कामगारों के बीच एक औद्योगिक विवाद विद्यमान है या होने की आशंका है;

अतः, अब, औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (1947 का XIV) की धारा 10 की उप-धारा (1) के साथ पठित धारा 7 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए और अधिसूचना संख्या III/डी।-14020/54 एल-15146 दिनांक 1 अक्टूबर, 1954 के अधिक्रमण में, बिहार के राज्यपाल महोदय एक औद्योगिक न्यायाधिकरण गठित करते हैं जिसके श्री अली हसन एकमात्र सदस्य होंगे और उक्त विवाद को न्यायनिर्णयन के लिए उक्त न्यायाधिकरण को संदर्भित करते हैं।

अनुलग्नक "ए"

1. बिहार में चीनी कारखानों में मौसमी कर्मचारियों को प्रतिधारण भत्ता।

2. चीनी कारखानों में मौसमी कर्मचारियों सहित कर्मचारियों को छुट्टी और अवकाश।

3. क्या चीनी कारखानों के प्रबंधन द्वारा कर्मचारियों की छुट्टी और अवकाश में की गई कटौती अनुचित है और यदि हाँ, तो कामगार किस क्षतिपूर्ति या राहत के हकदार हैं?

परिशिष्ट । में 28 चीनी कारखानों और परिशिष्ट ॥ में 38 श्रमिक संघों का उल्लेख किया गया था। गया शुगर मिल्स लिमिटेड, गुरारू परिशिष्ट । में दूसरे स्थान पर और चीनी मजदूर संघ गुरारू परिशिष्ट ॥ में तीसरे स्थान पर उल्लिखित था।

उत्तरदाता संख्या 1 ने उक्त संदर्भ पर कार्यवाही आरंभ की। यद्यपि गया शुगर मिल्स लिमिटेड, गुरारू, जो उस समय परिसमापन में था, को परिशिष्ट । में विशेष रूप से उस रूप में वर्णित नहीं किया गया था, उत्तरदाता संख्या 1 द्वारा समापक को 11 जनवरी, 1955 के लिए सूचना दी गई थी, जो उनके समक्ष सुनवाई के लिए निर्धारित तिथि थी। तथापि, उक्त पत्र समापक को 13 जनवरी, 1955 को प्राप्त हुआ, जिस पर उन्होंने 14 जनवरी, 1955 के अपने पत्र द्वारा उत्तरदाता संख्या 1 को इस बारे में सूचित किया। उत्तरदाता संख्या 1 ने यद्यपि समापक के पत्र पर मात्र यह पृष्ठांकन करके स्वयं को संतुष्ट कर लिया कि सुनवाई पहले ही संपन्न हो चुकी है और पत्र के वितरण में विलंब के कारण के बारे में डाकघर से पूछताछ करने के अतिरिक्त और

कुछ नहीं किया जा सकता था। उत्तरदाता संख्या 1 ने 17 फरवरी, 1955 को अपना पंचाट दिया और इसे 23 फरवरी, 1955 को आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित किया गया। न्यायनिर्णयन की कार्यवाही जो संदर्भ की तिथि अर्थात् 2 दिसंबर, 1954 को आरंभ हुई थी, पंचाट के प्रकाशन के 30 दिन पूर्ण होने पर अर्थात् 25 मार्च, 1955 को औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 20 (3) के अधीन समाप्त हो गई। यह प्रतीत होता है कि इस पंचाट के विरुद्ध श्रम अपीलीय न्यायाधिकरण में एक अपील की गई थी और अपील पर 31 अगस्त, 1956 को निर्णय लिया गया था।

भले ही अपीलकर्ता 6 दिसंबर, 1954 के पट्टे के निबंधनों के अधीन उक्त मिलों के कब्जे में था, उत्तरदाता संख्या 1 द्वारा अपीलकर्ता को कोई सूचना नहीं दी गई और इसलिए अपीलकर्ता उत्तरदाता संख्या 1 के समक्ष उपस्थित नहीं हो सका और नहीं हुआ। जहाँ तक अपीलकर्ता का संबंध था, उत्तरदाता संख्या 1 के समक्ष की गई कार्यवाही एकपक्षीय थी। तथापि, 23 मार्च, 1955 को औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 33ए के अधीन दो आवेदन किए गए, एक 15 व्यक्तियों द्वारा जिसमें आरोप लगाया गया कि अपीलकर्ता ने बिना किसी कारण और बिना किसी पूर्व सूचना के उन्हें जनवरी और फरवरी 1955 के महीनों के दौरान एक-एक करके नियोजन से सेवामुक्त कर दिया था और दूसरा 5 व्यक्तियों द्वारा जिसमें आरोप लगाया गया था कि अपीलकर्ता ने बिना किसी कारण के उनकी सेवा की शर्तों को परिवर्तित कर दिया था, यह तर्क देते हुए कि उक्त सेवामुक्ति और सेवा की शर्तों में परिवर्तन अपीलकर्ता द्वारा पूर्वोक्त औद्योगिक न्यायाधिकरण के समक्ष विवादों के लंबित रहने के दौरान अधिनियम की धारा 33 के अधीन औद्योगिक न्यायाधिकरण की अनुमति प्राप्त किए बिना किया गया था। इन आवेदनों को 1955 के विविध वाद संख्या 26 और 27 के रूप में संख्यांकित किया गया था और अपीलकर्ता को 7 अप्रैल, 1955 को उत्तरदाता संख्या 1 से दो नोटिस प्राप्त हुए, दोनों 25 मार्च, 1955 के थे, जिनमें

अपीलकर्ता को दो विविध मामलों के दायर होने के बारे में सूचित किया गया था और अपीलकर्ता को 19 अप्रैल, 1955 तक कारण बताते हुए विवरण दाखिल करने का निर्देश दिया गया था। अपीलकर्ता ने तदनुसार उत्तरदाता संख्या 1 के समक्ष दो आवेदन या विवरण दाखिल किए जिनमें यह तर्क दिया गया था कि साथ-साथ औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 33-ए के अधीन उन व्यक्तियों (यहाँ उत्तरदाता संख्या 4 से 23) द्वारा दायर किया गया आवेदन पोषणीय नहीं था और अन्यथा अस्वीकार किए जाने योग्य था। अपीलकर्ता की ओर से यह अभिकथन किया गया था कि अपीलकर्ता ने उक्त मिलों के पट्टेदार के रूप में पट्टे के निबंधनों और शर्तों का कड़ाई से पालन किया था और पूर्वोक्त दो विविध वादों में शामिल किसी भी कामगार के संबंध में उसके भाग पर अधिनियम की धारा 33 का कोई उल्लंघन नहीं हुआ था। यह बताया गया कि जिन व्यक्तियों ने उक्त आवेदन दायर किए थे, उनमें से कोई भी उन 18 व्यक्तियों में सम्मिलित नहीं था जिनका विशेष रूप से पट्टे के खंड 11 में उल्लेख किया गया था और जिन्हें विशेष रूप से उक्त खंड के प्रवर्तन से छूट दी गई थी और न ही वे कर्मचारियों की उस श्रेणी में सम्मिलित थे जिनकी अपीलकर्ता पट्टेदार के रूप में पट्टे के खंड 13 (v) के अधीन छंटनी करने का हकदार नहीं था, जिसके परिणामस्वरूप यह नहीं कहा जा सकता था कि पट्टे के उक्त खंडों में से किसी का भी अपीलकर्ता द्वारा उल्लंघन किया गया था।

13 जुलाई, 1955 को अपीलकर्ता ने पटना स्थित उच्च न्यायालय में संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन एक रिट आवेदन दाखिल किया, जो 1955 का विविध न्यायिक वाद संख्या 392 था, जिसमें अध्यक्ष, औद्योगिक न्यायाधिकरण, बिहार को उत्तरदाता संख्या 1 के रूप में, बिहार राज्य को उत्तरदाता संख्या 2 के रूप में, समापक को उत्तरदाता संख्या 3 के रूप में और औद्योगिक न्यायाधिकरण के समक्ष लंबित 1955 के उक्त विविध वाद संख्या 26 और 27 के आवेदकों को उत्तरदाता संख्या 4 से 23 के रूप में पक्षकार बनाया गया था और

1955 के उक्त विविध वाद संख्या 26 और 27 को अभिखंडित करने के लिए उत्प्रेषण रिट की, उत्तरदाता संख्या 1 को उक्त विविध वादों में आगे कार्यवाही करने या अन्यथा निपटने से रोकने के लिए परमादेश रिट की, और व्यय तथा अन्य राहत की मांग की गई थी।

उक्त याचिका में अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत मुख्य तर्क थे:-

(1) कि न्यायनिर्णयन के लिए भेजे गए प्रत्येक बिंदु के अधीन, संबंधित चीनी कारखानों पर काफी वित्तीय भार डाला गया था; कि गया शुगर मिल्स लिमिटेड की सभी संपत्तियाँ और प्रभाव परिसमापन के आदेश की तिथि अर्थात् 14 नवंबर, 1951 से न्यायालय की अभिरक्षा में थे; कि उक्त अधिसूचना में गया शुगर मिल्स लिमिटेड को उस प्रकाश में सम्मिलित करने का आशय नहीं था और कंपनी को पहले ही परिसमापन में चली गई के रूप में वर्णित नहीं किया गया था; कि न्यायाधिकरण के समक्ष कार्यवाही आरंभ करने या जारी रखने से पूर्व न्यायालय की कोई अनुमति प्राप्त नहीं की गई थी और वास्तव में समापक को न तो पक्षकार के रूप में नामित किया गया था और न ही उसे कार्यवाही आरंभ होने की कोई सूचना दी गई थी और इसलिए जहाँ तक गया शुगर मिल्स लिमिटेड (परिसमापन में) का संबंध था, विधि की दृष्टि में उत्तरदाता संख्या 1 के समक्ष कोई कार्यवाही नहीं थी और इसलिए 1955 के विविध वाद संख्या 26 और 27 जिनकी सूचनाएँ अपीलकर्ता को भेजी गई थीं, पोषणीय नहीं थीं; और

(2) कि 2 दिसंबर, 1954 की पूर्वोक्त अधिसूचना से उत्पन्न न्यायनिर्णयन कार्यवाही की कोई सूचना किसी भी चरण में अपीलकर्ता को नहीं दी गई थी जो न्यायालय द्वारा स्वीकृत पट्टे के निबंधनों के अधीन कब्जे में था; कि अपीलकर्ता न्यायालय के आदेशों और न्यायालय द्वारा अनुमोदित पट्टे के निबंधनों के अधीन पट्टेदार होने के नाते, पट्टे के निबंधनों के उल्लंघन, यदि कोई हो, के लिए उत्तरदायी था, और वह भी केवल न्यायालय के प्रति; कि औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 33 का कोई उल्लंघन नहीं हुआ था, यदि अपीलकर्ता ने सद्भावपूर्वक पट्टे के

निबंधनों के अनुसार कार्य किया था और स्वयं किसी न्यायाधिकरण या उत्तरदाता संख्या 1 के समक्ष किसी भी न्यायनिर्णयन कार्यवाही का पक्षकार न होने के कारण अधिनियम की धारा 33 का कोई उल्लंघन नहीं हो सकता था और इसलिए अधिनियम की धारा 33ए के अधीन अपीलकर्ता के विरुद्ध कोई आवेदन पोषणीय नहीं हो सकता था।

किसी भी उत्तरदाता द्वारा या उनकी ओर से कोई प्रति शपथ-पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया और आवेदन रामास्वामी, मुख्य न्यायाधीश और राज किशोर प्रसाद, न्यायमूर्ति के समक्ष सुनवाई के लिए आया, जिन्होंने 20 सितंबर, 1956 को न्यायालय का निर्णय सुनाया, तथा व्यय सहित आवेदन को ख़ारिज कर दिया।

यह मानते हुए लेकिन कोई मत व्यक्त किए बिना कि राज्य सरकार द्वारा औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 10(1) के अधीन किया गया संदर्भ भारतीय कंपनी अधिनियम की धारा 171 के अर्थ के अंतर्गत एक विधिक कार्यवाही था, उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 10(1), भारतीय कंपनी अधिनियम की धारा 171 द्वारा नियंत्रित नहीं थी और इसलिए औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 10(1) के अधीन औद्योगिक विवादों का संदर्भ देने से पूर्व न्यायालय की कोई अनुमति आवश्यक नहीं थी। इसका यह भी मत था कि भले ही औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 10(1) के अधीन संदर्भ राज्य सरकार द्वारा 2 दिसंबर, 1954 को दिया गया था, और आवेदक ने तत्पश्चात अर्थात् 6 दिसंबर, 1954 को उक्त मिलों का पट्टा लिया था, आवेदक अधिनियम की धाराओं 33 और 33ए में प्रयुक्त शब्द के अर्थ के अंतर्गत एक "नियोक्ता" था, और यह कि उन दोनों में से किसी भी धारा को लागू करने के लिए यह आवश्यक नहीं था कि जो नियोक्ता कामगारों को सेवामुक्त या दंडित करता है या जो कामगारों की सेवा शर्तों में परिवर्तन करता है, उसे वही नियोक्ता होना चाहिए जो उस औद्योगिक विवाद से संबंधित है जो न्यायनिर्णयन का विषय है। उन धाराओं में से किसी के

भी प्रावधानों का अवलंबन लेने के लिए इतना पर्याप्त था कि जिस समय कामगार को सेवामुक्त या दंडित किया जाता है या जिस समय उसके प्रतिकूल उसकी सेवा शर्तों में परिवर्तन किया जाता है, उस समय नियोक्ता और कर्मचारी का संबंध विद्यमान हो। इसका आगे यह भी मत था कि भले ही राज्य सरकार द्वारा औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 10(1) के अधीन दिए गए संदर्भ में समापक को पक्षकार नहीं बनाया गया था, गया शुगर मिल्स लिमिटेड, गुरारू का विशेष रूप से परिशिष्ट । में पक्षकारों में से एक के रूप में उल्लेख किया गया था, कि गया शुगर मिल्स लिमिटेड एक विधिक व्यक्तित्व बना रहा भले ही परिसमापन के लिए आदेश पारित किया गया था और इसलिए कंपनी को अधिनियम की धारा 10(1) के अधीन संदर्भ में उचित रूप से एक पक्षकार बनाया गया था। यह तथ्य कि 11 जनवरी, 1955 को समापक को दी गई सूचना समापक को देर से प्राप्त हुई होगी, न्यायालय के मत में, स्थिति में कोई अंतर नहीं लाती क्योंकि औद्योगिक न्यायाधिकरण का पंचाट 17 फरवरी, 1955 को दिया गया था, अर्थात् सूचना की तिथि के बहुत बाद और गया शुगर मिल्स लिमिटेड, गुरारू पर पंचाट को वैध और बाध्यकारी बनाने के लिए औद्योगिक न्यायाधिकरण में क्षेत्राधिकार की कोई कमी नहीं थी। तदनुसार उच्च न्यायालय ने उपर्युक्त रूप में आवेदन को अस्वीकार कर दिया।

आवेदक ने 9 नवंबर, 1956 को इस न्यायालय में अपील करने की अनुमति के लिए आवेदन किया, परंतु उच्च न्यायालय ने इस आधार पर प्रमाणपत्र प्रदान करने से अस्वीकार कर दिया कि अनुच्छेद 226 के अधीन उत्प्रेषण रिट प्रदान करने की कार्यवाही संविधान के अनुच्छेद 133 के अर्थ के अंतर्गत दीवानी कार्यवाही नहीं है। तत्पश्चात आवेदक ने 1 अप्रैल, 1957 को इस न्यायालय में आवेदन किया और अपील के लिए विशेष अनुमति प्राप्त की और अब यह अपील हमारे समक्ष सुनवाई और अंतिम निपटान के लिए प्रस्तुत हुई है।

अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा हमारे समक्ष प्रस्तुत किए गए दो मुख्य तर्क थे:-

(1) कि गया शुगर मिल्स लिमिटेड, गुरारू परिसमापन में चली गई थी और उत्तरदाता संख्या 3 को उसका समापक नियुक्त किया गया था; कि 2 दिसंबर, 1954 को राज्य सरकार द्वारा औद्योगिक न्यायाधिकरण को दिए गए संदर्भ में उक्त मिलों पर काफी वित्तीय भार सम्मिलित था और राज्य सरकार को उक्त मिलों के संबंध में औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 10(1) के अधीन औद्योगिक न्यायाधिकरण को औद्योगिक विवादों का संदर्भ देने से पूर्व भारतीय कंपनी अधिनियम की धारा 171 के अधीन न्यायालय की स्वीकृति प्राप्त करनी चाहिए थी और ऐसा न किए जाने के कारण, संदर्भ विधि के विरुद्ध था और अधिनियम की धारा 33 या धारा 33 ए में से किसी के भी लागू होने का कोई प्रश्न नहीं था, और

(2) कि अधिनियम की धाराओं 33 और 33 ए के सही अर्थान्वयन पर, उसमें उल्लिखित "नियोक्ता" केवल वही "नियोक्ता" हो सकता है जो उस औद्योगिक विवाद से संबंधित था जो संदर्भ का विषय था, कि आवेदक ने राज्य सरकार द्वारा अधिनियम की धारा 10(1) के अधीन दिए गए संदर्भ की तिथि से 4 दिन पश्चात, 6 दिसंबर, 1954 को उक्त चीनी मिलों का पट्टा लिया था, और इसलिए आवेदक अधिनियम की धारा 33 या धारा 33 ए में प्रयुक्त शब्दों के अर्थ के अंतर्गत "नियोक्ता" नहीं था, और भले ही उत्तरदाता संख्या 1 के समक्ष 1955 के विविध वाद संख्या 26 और 27 में आवेदकों द्वारा लगाए गए आरोप सही थे, आवेदक के लिए अधिनियम की धारा 33 के अधीन औद्योगिक न्यायाधिकरण की अनुमति प्राप्त करना आवश्यक नहीं था, और इसलिए उत्तरदाता संख्या 4 से 23 द्वारा दायर अधिनियम की धारा 33 ए के अधीन उक्त आवेदन पोषणीय नहीं थे।

इस स्तर पर भारतीय कंपनी अधिनियम और औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (जैसी कि वे उस समय विद्यमान थीं) की उन प्रासंगिक धाराओं को प्रस्तुत करना उपयुक्त होगा, जिन पर इस अपील में हमारे द्वारा विचार किया जाना है।

धारा 171 (भारतीय कंपनी अधिनियम):-

बोर्ड, न्यायालयों या न्यायाधिकरणों को विवादों का संदर्भ:

जहाँ समुचित सरकार की यह राय है कि कोई औद्योगिक विवाद विद्यमान है या होने की आशंका है, वह किसी भी समय, लिखित आदेश द्वारा-

(ए) विवाद को उसके समझौते को बढ़ावा देने के लिए एक बोर्ड को संदर्भित करे;

(बी) विवाद से संबंधित या सुसंगत प्रतीत होने वाले किसी मामले को जाँच के लिए किसी न्यायालय को संदर्भित करे; या

(सी) विवाद या विवाद से संबंधित या सुसंगत प्रतीत होने वाले किसी मामले को न्यायनिर्णयन के लिए न्यायाधिकरण को संदर्भित करे :

परंतु यह कि जहाँ विवाद लोक उपयोगी सेवा से संबंधित है और धारा 22 के अधीन सूचना दी गई है, समुचित सरकार, जब तक कि वह यह विचार न करे कि सूचना तुच्छ या कष्टप्रद रूप से दी गई है या ऐसा करना असमीचीन होगा, इस बात के होते हुए भी कि विवाद के संबंध में इस अधिनियम के अधीन कोई अन्य कार्यवाही आरंभ हो गई हो, इस उप-धारा के अधीन संदर्भ देगी।"

धारा 33 (पूर्वोक्त): *कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान सेवा की शर्तों आदि का अपरिवर्तित रहना :*

"किसी औद्योगिक विवाद के संबंध में किसी सुलह कार्यवाही या किसी न्यायाधिकरण के समक्ष कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान, कोई भी नियोक्ता-

(ए) ऐसे विवाद से संबंधित कामगारों के प्रतिकूल, ऐसी कार्यवाही के आरंभ होने के ठीक पूर्व उन पर लागू सेवा की शर्तों में परिवर्तन करेगा; या

(बी) ऐसे विवाद से संबंधित किसी भी कामगार को सेवामुक्त करेगा या दंडित करेगा, चाहे वह बर्खास्तगी द्वारा हो या अन्यथा, सिवाय मामले के अनुसार सुलह अधिकारी, बोर्ड या न्यायाधिकरण की लिखित में स्पष्ट अनुमति के।"

धारा 33ए (पूर्वोक्त): *इस बात के न्यायनिर्णयन के लिए विशेष प्रावधान कि क्या कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान सेवा की शर्तों आदि में परिवर्तन किया गया है :*

"जहाँ कोई नियोक्ता किसी न्यायाधिकरण के समक्ष कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान धारा 33 के प्रावधानों का उल्लंघन करता है, ऐसे उल्लंघन से व्यथित कोई भी कर्मचारी विहित रीति से ऐसे न्यायाधिकरण को लिखित में शिकायत कर सकता है और ऐसी शिकायत प्राप्त होने पर वह न्यायाधिकरण शिकायत पर ऐसे न्यायनिर्णयन करेगा मानो वह उसे संदर्भित या उसके समक्ष लंबित कोई विवाद हो, इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार और अपना पंचाट समुचित सरकार को प्रस्तुत करेगा और इस अधिनियम के प्रावधान तदनुसार लागू होंगे।"

(1) के संबंध में :- भारतीय कंपनी अधिनियम की धारा 171 भाग V में आती है जो कंपनियों के परिसमापन से संबंधित है और यह विहित करती है कि एक बार परिसमापन का आदेश दिए जाने के पश्चात परिसमापन न्यायालय की अनुमति और ऐसे निबंधनों के अधीन जिन्हें न्यायालय अधिरोपित करे, के अतिरिक्त कंपनी के विरुद्ध कोई वाद या अन्य विधिक कार्यवाही आगे नहीं बढ़ाई जाएगी या आरंभ नहीं की जाएगी। न्यायालय समापक के माध्यम से कंपनी की सभी संपत्तियों और आस्तियों की अभिरक्षा में है और आस्तियों की उचित वसूली और कंपनी के लेनदारों के बीच उनके साम्यापूर्ण वितरण की दृष्टि से परिसमापन कार्यवाही पर नियंत्रण रखता है। इसलिए न्यायालय की अनुमति के बिना कंपनी के विरुद्ध कोई वाद या अन्य विधिक कार्यवाही आगे नहीं बढ़ाई जा सकती या आरंभ नहीं की जा सकती है और ऐसी अनुमति ऐसी विधिक कार्यवाही के संचालन की एक आवश्यक पूर्वशर्त है। भारतीय कंपनी अधिनियम की

धारा 171 की प्रयोज्यता के प्रश्न का निर्णय करने के लिए यह अभिनिश्चित किया जाना है कि (ए) क्या प्रश्नाधीन संदर्भ कंपनी के विरुद्ध एक कार्यवाही है, और, यदि हाँ, तो (बी) क्या ऐसे संदर्भ को भारतीय कंपनी अधिनियम की धारा 171 के अर्थ के अंतर्गत एक विधिक कार्यवाही कहा जा सकता है।

दुर्भाग्यवश अधीनस्थ न्यायालय के विचारों में काफी भ्रम रहा है और तथ्यों का उचित रूप से मूल्यांकन नहीं किया गया है। निर्धारण करने के लिए पहला प्रश्न यह था कि संदर्भ का पक्षकार कौन था। ऐसा प्रतीत होता है कि यह मान लिया गया था कि गया शुगर मिल्स लिमिटेड संदर्भ का एक पक्षकार था और संदर्भ के आदेश में एकमात्र त्रुटि यह थी कि समापक को संदर्भ का पक्षकार नहीं बनाया गया था। इस कठिनाई को यह अभिनिर्धारित करके दूर करने का प्रयास किया गया कि गया शुगर मिल्स लिमिटेड एक विधिक व्यक्तित्व बनी रही भले ही परिसमापन के लिए आदेश पारित किया गया था, कि कंपनी का एक विधिक इकाई के रूप में अस्तित्व समाप्त नहीं हुआ था, और इसलिए, कंपनी को औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 10(1) के अधीन संदर्भ का उचित रूप से पक्षकार बनाया गया था। तथापि, संदर्भ के निबंधनों के सही अर्थान्वयन पर यह सही स्थिति नहीं थी। संदर्भ परिशिष्ट । में विनिर्दिष्ट चीनी कारखानों के प्रबंधन और परिशिष्ट ॥ में विनिर्दिष्ट संघों द्वारा प्रतिनिधित्व किए जाने वाले उनके कामगारों के बीच था। गया शुगर मिल्स लिमिटेड, गुरारू का परिशिष्ट । में मद 2 के रूप में उल्लेख किया गया था, लेकिन यह बिल्कुल स्पष्ट है कि इस मद के अधीन जिसे संदर्भ का पक्षकार बनाने का आशय था, वह चीनी कारखाने का प्रबंधन था जो गया शुगर मिल्स लिमिटेड नामक कंपनी का था, चाहे वह प्रबंधन कोई भी हो। कंपनी का उल्लेख उस विशेष कारखाने को इंगित करने और बताने के लिए था जिसका उस समय का प्रबंधन संदर्भ के पक्षकारों में से एक होना था और यह अभिनिश्चित करने की आवश्यकता थी कि मिलों के "प्रबंधन" के अंतर्गत कौन सम्मिलित था।

राज्य सरकार इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं हो सकती थी कि कंपनी परिसमापन में चली गई थी और न्यायालय द्वारा कंपनी का एक समापक नियुक्त किया गया था और वह विभिन्न पट्टेदारों को कारखाना पट्टे पर दे रहा था। यदि स्वयं कंपनी संदर्भ का एक पक्षकार होती तो समापक का वहां उसी रूप में उल्लेख किया जाना चाहिए था, परंतु स्पष्ट रूप से ऐसा इस साधारण कारण से नहीं किया गया कि न्यायालय द्वारा विधिवत स्वीकृत पट्टों के निबंधनों के अधीन पट्टेदारों द्वारा कारखाने का संचालन किया जा रहा था। इसलिए समापक कारखाने के प्रबंधन में नहीं था और प्रबंधन में केवल वे तत्कालीन पट्टेदार थे जिन्हें न्यायालय की स्वीकृति से समापक द्वारा पट्टे प्रदान किए गए थे। औद्योगिक न्यायाधिकरण स्पष्ट रूप से त्रुटि में था जब उसने समापक को कार्यवाही की सूचना दी। समापक अब कारखाने के प्रबंधन में नहीं था और इसलिए वह किसी भी सूचना की तामील का अधिकारी नहीं था; तत्कालीन पट्टेदार प्रबंधन में थे और वे ही एकमात्र पक्षकार थे जिन्हें कार्यवाही की सूचना दी जानी चाहिए थी। निस्संदेह समापक ने औद्योगिक न्यायाधिकरण को लिखा कि उसे उपस्थित होने के लिए सूचना अत्यंत विलंब से प्राप्त हुई थी। समापक के इस पत्र को औद्योगिक न्यायाधिकरण द्वारा अत्यंत कम शिष्टाचार के साथ लिया गया, जिसने पत्र के निचले भाग में केवल यह पृष्ठांकन किया कि सुनवाई पहले ही समाप्त हो चुकी थी और पत्र के वितरण में विलंब के कारण के विषय में डाकघर से पूछताछ करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं किया जा सकता था। औद्योगिक न्यायाधिकरण ने अपने समक्ष कारखाने के प्रबंधन, अर्थात् उन पट्टेदारों को जिन्होंने समापक से उक्त मिलों का पट्टा प्राप्त किया था, रखे बिना 17 फरवरी, 1955 को अपना पंचाट देने की कार्यवाही की और सभी व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए उक्त पंचाट जहाँ तक उन पट्टेदारों का संबंध था जो संदर्भ के दिनांक पर कारखाने के प्रबंधन में थे और जिन्हें स्पष्ट रूप से संदर्भ का पक्षकार बनाने का आशय था, एकपक्षीय था। अपीलकर्ता संदर्भ के पश्चात कारखाने के प्रबंधन में आया और संदर्भ की तिथि पर

राज्य सरकार के विचार में एक पक्षकार के रूप में नहीं हो सकता था और किसी भी स्थिति में, न्यायाधिकरण के समक्ष कार्यवाही की कोई भी सूचना अपीलकर्ता को नहीं दी गई थी। किसी भी कल्पना से यह नहीं कहा जा सकता था कि कंपनी (परिसमापन में) संदर्भ का एक पक्षकार थी, क्योंकि उक्त मिलों को उन पट्टेदारों को पट्टे पर दे दिया गया था जिन्होंने तत्पश्चात कंपनी के लिए और उसकी ओर से नहीं बल्कि अपने स्वयं के लिए मिलों का संचालन किया, और वे मिलों के संचालन में लाभ और हानि के लिए उत्तरदायी थे। इस प्रकार कंपनी के संदर्भ का पक्षकार न होने के कारण, 2 दिसंबर, 1954 को न्यायाधिकरण के समक्ष आरंभ की गई कार्यवाहियां कंपनी (परिसमापन में) के विरुद्ध कार्यवाहियां नहीं थीं। उस अधिसूचना के निबंधनों के सही अर्थान्वयन पर यह स्थिति होने के कारण जिसके द्वारा संदर्भ दिया गया था, यह प्रश्न कि क्या संदर्भ भारतीय कंपनी अधिनियम की धारा 171 के अर्थ के अंतर्गत एक विधिक कार्यवाही था, हमारे निर्णय के लिए उत्पन्न नहीं होता है और हम प्रश्न के उस भाग पर कोई मत व्यक्त नहीं करना पसंद करते हैं।

(2) के संबंध में :- विचार करने के लिए अगला प्रश्न औद्योगिक विवाद अधिनियम की धाराओं 33 और 33ए में प्रयुक्त "नियोक्ता" शब्द का अर्थ है। ये धाराएं किसी औद्योगिक विवाद की कार्यवाही के लंबित रहने की पूर्वधारणा करती हैं। विवाद उत्पन्न करने के लिए दो की आवश्यकता होती है। इस प्रकार अधिनियम की धारा 2(के) में एक औद्योगिक विवाद को निम्नानुसार परिभाषित किया गया है:-

"औद्योगिक विवाद" का अर्थ नियोक्ताओं और नियोक्ताओं के बीच, या नियोक्ताओं और कामगारों के बीच, या कामगारों और कामगारों के बीच किसी भी ऐसे विवाद या मतभेद से है, जो किसी व्यक्ति के नियोजन या गैर-नियोजन या नियोजन के निबंधनों या श्रम की शर्तों से संबंधित हो।

यदि इस परिभाषा को धारा 2 (के) से पूर्णतः लेकर अधिनियम की धारा 33 में आने वाले पद "औद्योगिक विवाद" के स्थान पर प्रतिस्थापित कर दिया जाए और फिर अधिनियम की धारा 33 और 33ए को पढ़ा जाए, तो यह तुरंत स्पष्ट हो जाएगा कि नियोक्ता वही नियोक्ता हो सकता है जिसके साथ कामगारों का औद्योगिक विवाद था और इसका अर्थ केवल वह नियोक्ता नहीं हो सकता जो संबंधित कामगारों को सेवामुक्त या दंडित करता है अथवा उनकी सेवा की शर्तों में परिवर्तन करता है। यदि उच्च न्यायालय द्वारा अपनाया गया अर्थान्वयन सही होता, तो इसका अर्थ यह होता कि औद्योगिक विवाद जिसे न्यायनिर्णयन के लिए औद्योगिक न्यायाधिकरण को संदर्भित किया गया है, वह नियोक्ता ए और उसके कामगारों के बीच उत्पन्न हुआ हो सकता है, लेकिन उन कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान नियोक्ता बी, जिसका नियोक्ता ए से कोई लेना-देना नहीं था, को कामगारों को सेवामुक्त करने या दंडित करने या उनकी सेवा की शर्तों को बदलने से रोका जाएगा, बशर्ते कि संबंधित कामगार उस औद्योगिक विवाद में रुचि रखते हों जो औद्योगिक न्यायाधिकरण के समक्ष लंबित था। यदि ऊपर दिए गए उदाहरण में नियोक्ता ए और नियोक्ता बी के बीच कोई संबंध नहीं है, तो यह समझ पाना कठिन है कि केवल प्रतिष्ठानों की पहचान या कामगारों की पहचान नियोक्ता बी को इन धाराओं के दायरे में लाने के लिए पर्याप्त कैसे हो सकती है। औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 33 और 33ए के अधिनियमन का मुख्य उद्देश्य, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा *ऑटोमोबाइल प्रोडक्ट्स ऑफ इंडिया लिमिटेड बनाम रुकमाजी बाला*([1]) में देखा गया है, वह यह है:

"यह सुनिश्चित करना कि पहले से लंबित औद्योगिक विवादों के संबंध में कार्यवाहियाँ शांतिपूर्ण वातावरण में समाप्त हों और उन कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान कोई भी नियोक्ता उन धाराओं में उल्लिखित प्रकार की कोई ऐसी कार्रवाई न करे जिससे नए विवाद उत्पन्न हों और नियोक्ता तथा कामगारों के बीच पहले से ही तनावपूर्ण संबंधों में और कटुता आने की

1 [1955] 1 एस.सी.आर. 1241, 1256

संभावना हो। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए, नियोक्ता के उस सामान्य अधिकार पर प्रतिबंध लगा दिया गया है जो उसे रोजगार के अनुबंध को नियंत्रित करने वाली सामान्य विधि के अंतर्गत प्राप्त है। 1950 के अधिनियम की धारा 22 और 1947 के अधिनियम की धारा 33, जो यह प्रतिबंध लगाती हैं, उपयुक्त मामलों में उसमें उल्लिखित प्राधिकारी द्वारा लिखित में स्पष्ट अनुमति प्रदान करके उस प्रतिबंध को हटाने का भी प्रावधान करती हैं।"

औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 33 के अधीन जाँच का दायरा भी इस न्यायालय द्वारा न्यायनिर्णयन का विषय रहा है और *एथरटन वेस्ट एंड कंपनी लिमिटेड बनाम सूती मिल मजदूर यूनियन*([2]) में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि प्राधिकारी:

"संबंधित अधिकारी एक जाँच शुरू करेगा और इस निष्कर्ष पर पहुँचेगा कि क्या कामगार को सेवामुक्त करने या बर्खास्त करने के लिए कोई प्रथम दृष्टया मामला बनता है और क्या नियोक्ता, उसका एजेंट या प्रबंधक कामगार की प्रस्तावित सेवामुक्ति या बर्खास्तगी के मामले में किसी अनुचित मंशा से प्रेरित तो नहीं था अथवा उसने किसी अनुचित व्यवहार या प्रताड़ना का सहारा तो नहीं लिया था।"

एक समान अनुपात वहां भी लागू होगा जहां एक नियोक्ता संबंधित कामगारों की सेवा की शर्तों में परिवर्तन करता है। यदि यह निर्धारित करने की कसौटी है कि क्या कोई नियोक्ता संबंधित प्राधिकारी की लिखित अनुमति के बिना कामगारों को सेवामुक्त करने या दंडित करने या उनकी सेवा की शर्तों को बदलने का हकदार था, तो वह नियोक्ता उस नियोक्ता के अलावा कोई और नहीं हो सकता जो उस औद्योगिक विवाद से संबंधित है जो न्यायनिर्णयन का विषय है। यदि नियोक्ता 'बी' का नियोक्ता 'ए' से कोई लेना-देना नहीं है, जो वास्तव में उस औद्योगिक विवाद में संबंधित पक्षकार है जो न्यायनिर्णयन का विषय है, तो उन कामगारों के विरुद्ध प्रस्तावित कार्रवाई के संबंध में नियोक्ता 'बी' पर किसी भी अनुचित मंशा या अनुचित व्यवहार या

2 [1953] एस.सी.आर. 780, 787

प्रताड़ना का आरोप लगाने का प्रश्न ही नहीं उठेगा। नियोक्ता 'बी' ऐसी कार्रवाई का हकदार होगा या नहीं, इसका निर्धारण अन्य कार्यवाहियों में करना होगा जो उन औद्योगिक विवादों के मामले में की जा सकती हैं जो ऐसी कार्रवाई किए जाने के बाद उसके और उसके कामगारों के बीच भविष्य में उत्पन्न हो सकते हैं। लेकिन वह निश्चित रूप से ऐसी कार्रवाई करने से पहले उस औद्योगिक न्यायाधिकरण की लिखित अनुमति लेने के लिए बाध्य नहीं होगा जिसके समक्ष उन कामगारों और किसी अन्य नियोक्ता, जिससे उसका कोई सरोकार नहीं था, के बीच कोई औद्योगिक विवाद लंबित था। इसलिए बाद वाला अर्थान्वयन औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 33 के अधिनियमन के अंतर्निहित सिद्धांत के अधिक अनुकूल है और यह माना जाना चाहिए कि औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 33 और 33ए द्वारा परिकल्पित नियोक्ता वही समान नियोक्ता होना चाहिए जो उस औद्योगिक विवाद से संबंधित है जो न्यायनिर्णयन का विषय है। दूसरे शब्दों में, औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 33 और 33ए द्वारा परिकल्पित नियोक्ता वही होना चाहिए जिसके साथ धारा 33 के अंतर्गत व्यथित कामगारों का उन धाराओं में उल्लेखित कार्यवाहियों के आरंभ के समय नियोक्ता और कर्मचारी का वास्तविक संबंध था। संदर्भ के प्रारंभ के समय वाले नियोक्ता और उस नियोक्ता के बीच एकरूपता स्थापित होनी चाहिए जो अधिनियम की धारा 33 के प्रतिबंध के अंतर्गत आने वाली कोई कार्रवाई करना चाहता है; यदि बाद वाले का पूर्ववर्ती से कोई संबंध या सरोकार नहीं है, तो अधिनियम की धारा 33 और 33ए बिल्कुल भी लागू नहीं होती हैं। नियोक्ताओं में परिवर्तन की स्थिति में ऐसी एकरूपता यह दिखाकर सिद्ध की जा सकती है कि बाद वाला नियोक्ता केवल पूर्ववर्ती का एक नामित या बेनामीदार था, या औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 18(3)(सी) के सदृश वह उस प्रतिष्ठान के संबंध में "उसके वारिसों, उत्तराधिकारियों या समनुदेशिती" की श्रेणी में आता है जिससे विवाद संबंधित है। ऐसी स्थिति में औद्योगिक न्यायाधिकरण द्वारा दिया गया निर्णय उस पर भी उतना

ही बाध्यकारी होगा जितना कि कामगारों के पूर्ववर्ती नियोक्ता पर था। औद्योगिक विवाद अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार, केवल इन्हीं परिस्थितियों में कार्यवाहियों के प्रारंभ के समय के नियोक्ता और कामगारों को सेवामुक्त करने, दंडित करने या उनकी सेवा शर्तों में परिवर्तन करने का इरादा रखने वाले नियोक्ता के बीच एकरूपता स्थापित की जा सकती है। जब तक कि यह नियोक्ता इस अर्थ में उस नियोक्ता के समान न हो जो न्यायनिर्णयन के अधीन औद्योगिक विवाद से संबंधित था, तब तक औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 33 या धारा 33 ए के संचालन का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

तो फिर प्रश्नाधीन संदर्भ के अंतर्गत अपीलकर्ता की स्थिति क्या थी? अभिलेख से यह स्पष्ट नहीं होता है कि 2 दिसंबर, 1954 को उक्त मिलों का प्रबंधन कौन था। पुराने पट्टेदारों, 'गुरारू केन डेवलपमेंट एंड केन मार्केटिंग यूनियन लिमिटेड' के पक्ष में दिया गया पट्टा स्पष्ट रूप से समय की समाप्ति के कारण समाप्त हो गया था, क्योंकि पट्टे की अवधि संभवतः पेराई मौसम के अंत तक थी जो नवंबर, 1954 के महीने में किसी समय समाप्त हो गया होगा। समापक द्वारा अपीलकर्ता के पक्ष में पट्टा देने के लिए एक आवेदन किया गया था और इस आवेदन को न्यायालय द्वारा 3 दिसंबर, 1954 को स्वीकार कर लिया गया था, इसलिए किसी भी स्थिति में 3 दिसंबर, 1954 से पहले अपीलकर्ता को उक्त मिलों के प्रबंधन में नहीं कहा जा सकता था। वास्तव में, अपीलकर्ता के पक्ष में पट्टा 6 दिसंबर, 1954 को निष्पादित किया गया था, और उक्त मिलों का कब्जा भी उसी दिन समापक द्वारा अपीलकर्ता को दे दिया गया था। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता था कि जिस तिथि को राज्य सरकार द्वारा संदर्भ दिया गया था, उस समय अपीलकर्ता 'गया शुगर मिल्स लिमिटेड' के प्रबंधन के विवरण के अंतर्गत सम्मिलित था। यदि ऐसा था, तो पिछली तिथि का संदर्भ, बिना किसी अतिरिक्त तथ्य के, अपीलकर्ता को अपने दायरे में सम्मिलित नहीं कर सकता था और यही वह स्थिति प्रतीत होती है जिसे औद्योगिक

न्यायाधिकरण ने भी समझा था, जिसने अपीलकर्ता को कोई सूचना नहीं दी बल्कि कार्यवाही की सूचना त्रुटिपूर्ण ढंग से जैसा कि हम मानते हैं, कंपनी के समापक को दी थी। अपीलकर्ता उक्त मिलों के प्रबंधन में नहीं था और वह संदर्भ से बाध्य नहीं हो सकता था क्योंकि किसी भी स्तर पर न तो संदर्भ के निबंधनों में संशोधन करने का कोई प्रयास किया गया और न ही अपीलकर्ता पर उन कार्यवाहियों की सूचना तामील की गई जो औद्योगिक न्यायाधिकरण के समक्ष होनी थीं। औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 38 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए केंद्र सरकार द्वारा अधिनियमित औद्योगिक विवाद (केंद्रीय) नियम, 1947 के अंतर्गत, संदर्भ के पक्षकारों को सुनवाई के स्थान और समय की सूचना दी जानी आवश्यक थी (नियम 10); और औद्योगिक न्यायाधिकरण को पहली बैठक में पक्षकारों को अपना पक्ष रखने के लिए बुलाने का निर्देश दिया गया था (नियम 11); औद्योगिक न्यायाधिकरण को एकपक्षीय कार्यवाही करने की शक्ति केवल तब दी गई थी जब कार्यवाही का कोई पक्षकार उचित कारण बताए बिना उपस्थित होने या प्रतिनिधित्व करने में विफल रहता था (नियम 19); और औद्योगिक न्यायाधिकरण के समक्ष उपस्थित होने वाले पक्षकारों के प्रतिनिधियों को साक्ष्य बुलाए जाने पर परीक्षण, प्रति-परीक्षण और न्यायाधिकरण को संबोधित करने का अधिकार था (नियम 24): इस पूरी प्रक्रिया में यह परिकल्पना की गई थी कि संदर्भ के पक्षकारों को औद्योगिक न्यायाधिकरण के समक्ष होने वाली कार्यवाहियों के बारे में उचित रूप से अधिसूचित किया जाए और वे स्वयं या अपने अधिकृत प्रतिनिधियों के माध्यम से उसमें भाग लें। औद्योगिक न्यायाधिकरण द्वारा अपीलकर्ता को ऐसी कोई सूचना न दिए जाने का तथ्य यह दर्शाता है कि उन परिस्थितियों में न्यायाधिकरण द्वारा अपीलकर्ता को निश्चित रूप से संदर्भ का पक्षकार नहीं समझा गया था और 2 दिसंबर, 1954 को दिए गए संदर्भ के निबंधनों के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता था कि अपीलकर्ता, जो 6 दिसंबर, 1954 को उक्त मिलों के पट्टेदार के रूप में अस्तित्व में आया था, उक्त संदर्भ का

पक्षकार था। यदि पुराने पट्टेदार 2 दिसंबर, 1954 को उक्त मिलों के प्रबंधन में थे, तो उनके और अपीलकर्ता के बीच नियोक्ताओं की कोई एकरूपता नहीं थी। अपीलकर्ता ने निश्चित रूप से पुराने पट्टेदारों के माध्यम से कोई दावा नहीं किया था और न ही उसे औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 18(3)(सी) के अर्थ के अंतर्गत उस प्रतिष्ठान के संबंध में जिससे विवाद संबंधित था, उनके "वारिसों, उत्तराधिकारियों या समनुदेशिती" के रूप में वर्णित किया जा सकता था। ऐसा कोई सुझाव भी नहीं है कि अपीलकर्ता पिछले पट्टेदारों का *बेनामीदार* था या है। इसलिए, किसी भी स्थिति में अपीलकर्ता को न तो संदर्भ द्वारा और न ही औद्योगिक न्यायाधिकरण द्वारा दिए गए पंचाट द्वारा बाध्य माना जा सकता था, क्योंकि संदर्भ की तिथि के नियोक्ताओं और उस समय के नियोक्ताओं के बीच एकरूपता स्थापित नहीं हुई थी, जब औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 33-ए के अधीन आवेदनों में शिकायत किए गए कार्य उनके द्वारा किए जाने का तात्पर्य था।

यदि यह वास्तविक स्थिति है, तो संबंधित कामगारों को सेवामुक्त करने या दंडित करने या उनकी सेवा की शर्तों में परिवर्तन करने के लिए अधिनियम की धारा 33 के अंतर्गत औद्योगिक न्यायाधिकरण की लिखित अनुमति प्राप्त करने का प्रश्न ही नहीं उठता। यदि ऐसी किसी अनुमति की आवश्यकता नहीं थी, तो अधिनियम की धारा 33ए भी लागू नहीं हो सकती थी और 1955 के विविध वाद संख्या 26 और 27 के आवेदन पोषणीय नहीं थे।

परिणाम निस्संदेह दुर्भाग्यपूर्ण है, क्योंकि जो औद्योगिक विवाद प्रश्नाधीन संदर्भ द्वारा औद्योगिक न्यायाधिकरण को भेजे गए थे, वे अपनी प्रकृति में सामान्य थे और उनके दायरे में वे कामगार सम्मिलित होते जो सभी प्रासंगिक समय पर गया शुगर मिल्स लिमिटेड में कार्यरत थे। अपीलकर्ता 6 दिसंबर, 1954 से और उसके बाद उक्त मिलों के प्रबंधन में आया, और निश्चित रूप से यह आशय था कि इन विवादों का, जो अपीलकर्ता और उक्त मिलों में कार्यरत कामगारों के

बीच या तो विद्यमान थे या जिनकी आशंका थी, उस संदर्भ के निबंधनों के अधीन न्यायनिर्णयन किया जाना चाहिए। यदि अपीलकर्ता को संदर्भ की तिथि, अर्थात 2 दिसंबर, 1954 को उक्त मिलों के "प्रबंधन" के विवरण के भीतर सम्मिलित किया जा सकता, तो उक्त मिलों के कामगारों के संबंध में संदर्भ का उद्देश्य और प्रयोजन सिद्ध हो जाता। कठिनाई यह है कि वर्तमान मामले में न्यायालय द्वारा क्रमिक रूप से अस्तित्व में आने वाले विभिन्न प्रबंधनों को "परिशिष्ट एक में विनिर्दिष्ट चीनी कारखानों के प्रबंधन" शब्द के भीतर सम्मिलित नहीं माना जा सकता है, भले ही गया शुगर मिल्स लिमिटेड, गुरारू को उसमें मद संख्या 2 के रूप में उल्लेखित किया गया है। इस तरह के अर्थान्वयन से वे सभी क्रमिक पट्टेदार, जो औद्योगिक न्यायाधिकरण के समक्ष संदर्भ के लंबित रहने की पूरी अवधि के दौरान अस्तित्व में आए, संदर्भ के पक्षकार बन जाएंगे, जिससे औद्योगिक विवाद (केंद्रीय) नियम, 1947 के अंतर्गत प्रत्येक क्रमिक पट्टेदार को नई सूचनाएं जारी करना, मामले के नए विवरण प्रस्तुत करना और नई सुनवाई प्रदान करना आवश्यक हो जाएगा, यह एक ऐसा परिणाम है जिसकी परिकल्पना निश्चित रूप से राज्य सरकार द्वारा संदर्भ देते समय नहीं की जा सकती थी।

अतः, यह निष्कर्ष निकलता है कि अपीलकर्ता किसी भी दृष्टि से 2 दिसंबर, 1954 के संदर्भ का पक्षकार नहीं था, और ऐसा पक्षकार न होने के कारण, वह 1955 के विविध वाद संख्या 26 और 27 में आवेदन करने वाले कामगारों के संबंध में औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 33 और 33-ए के अर्थ के अंतर्गत "नियोक्ता" नहीं था। यदि कामगारों को लगा कि उनके साथ प्रताड़ना हुई है या कोई अनुचित श्रम व्यवहार किया गया है, तो वे संभवतः नए औद्योगिक विवाद उत्पन्न कर सकते थे और राज्य सरकार पर अधिनियम की धारा 10(1) के अंतर्गत अपने औद्योगिक विवादों का नया संदर्भ देने के लिए दबाव बना सकते थे, जिस पर हम कुछ नहीं कहते, लेकिन हमारे लिए यह पूर्णतः स्पष्ट है कि इस मामले की परिस्थितियों में

कामगार अधिनियम की धारा 33-ए के अधीन आवेदन का सहारा लेकर अप्रत्यक्ष रूप से औद्योगिक विवाद नहीं उठा सकते। इन आधारों पर यदि अपीलकर्ता संबंधित कामगारों को सेवामुक्त करने, दंडित करने या उनकी सेवा शर्तों में परिवर्तन करने से पहले औद्योगिक न्यायाधिकरण की लिखित अनुमति मांगने के लिए बाध्य नहीं था, जैसा कि हम मानते हैं कि वह नहीं था, तो अधिनियम की धारा 33-ए के अधीन उसके विरुद्ध कोई भी आवेदन विचारणीय नहीं होगा, भले ही यह मान लिया जाए कि उन आवेदनों में लगाए गए आरोप सही थे।

अतः परिणाम यह है कि उत्तरदाता संख्या 1, औद्योगिक न्यायाधिकरण, बिहार, पटना के समक्ष 1955 के विविध वाद संख्या 26 और 27 की कार्यवाहियाँ क्षेत्राधिकार के बिना हैं और अभिखंडित किए जाने योग्य हैं। इसलिए अपीलकर्ता की अपील स्वीकार की जाएगी, उच्च न्यायालय द्वारा 20 सितंबर, 1956 को दिया गया आदेश अपास्त कर दिया जाएगा और उत्तरदाता संख्या 1 के विरुद्ध उक्त विविध वाद संख्या 26 और 27 की कार्यवाहियों को अभिखंडित करने के लिए एक उत्प्रेषण रिट जारी की जाएगी। अपीलकर्ता विपक्षी उत्तरदाता से पूरी कार्यवाही के दौरान हुए अपने व्यय को प्राप्त करने का हकदार होगा।

अपील स्वीकृत की जाती है।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।